© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ0 रामविलास शर्माः जीवन सिद्धान्त व सैद्धान्तिक आलोचना

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य हिन्दी विभाग,
मर्यादा देवी कन्या पी.जी. कॉलेज,
बिरगापुर, हनुमानगंज, प्रयागराज।

सारांशः

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व डॉ रामविलास शर्मा हिन्दी आलोचना के वो दो स्तम्भ है जिन पर हम कह सकते है कि काफी हद तक हिन्दी आलोचना विधा की छत थमी हुई है। जहां हिन्दी आलोचना के भटकते स्वरुप को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दिशा प्रदान की वहीं डॉ0 रामविलास शर्मा ने आगे चलकर इस दिशा को मंजिल तक पहुंचाया। आ0 शुक्ल ने जहां हिन्दी आलोचना को उसकी अपनी निजी पहचान दी इसके अस्तित्व को प्रासंगिक बनाया वहीं डॉ0 रामविलास शर्मा ने इनकी राहों पर चलते हुए उसे और अधिक निखारने का प्रयास किया। इस अध्याय मे हम आ0 रामचन्द्र शुक्ल व डॉ0 रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे वहीं कहां इन दोनो की दृष्टियों में समानता व असामनता है इसका भी वर्णन करेंगे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जगत के विश्वविख्यात प्राणिवेता हैकल की प्रसिद्ध पुस्तक ''रिडिल आव दि युनिवर्स'' का हिन्दी में 'विश्व प्रपंच' के नाम से अनुवाद किया तथा उन्होने सिर्फ उसका अनुवाद ही नहीं किया बल्कि उसकी 155 पृष्ठों की भूमिका भी लिख डाली। शुक्ल जी स्पष्ट कहते हैं– ''कि भौतिक विज्ञान ने समस्त जड़, जगत्, द्रव्य व गति शक्ति का कार्य सिद्ध कर दिया है।''[1] ''द्रव्य और शक्ति का नित्य सम्बन्ध है। एक की भावना दूसरे के बिना नही हो सकती। न द्रव्य के बिना शक्ति रह सकती है न शक्ति के बिना द्रव्य''[2] द्रव्य और शक्ति दोनों अक्षर अविनाशी हैं वे एक दूसरे मे रुप परिवर्तित कर सकते हैं– पर नष्ट नहीं हो सकती। द्रव्य की मात्रा के बारे मे शुक्ला जी कहते हैं– ''विश्व में जितना द्रव्य था उतना है और सदा रहेगा उतने से न घट सकता है और न बढ़ सकता है। यही बात शक्ति के सम्बन्ध में सत्य है।''[3] इसके लिए वो उदाहरण भी देते हैं– ''मोमबत्ती जलकर नष्ट नही हो जाती वरन्धुएं के रुप में अर्थात वावव्य रुप में हो जाती है।''[4] ''इस वाष्प पदार्थ की तौल मोमबत्ती की तौल के बराबर होगी।''[5] 19वीं शताब्दी के पांचवे दशक में जर्मन भौतिकवादी आर0 मेयर कहते है– ''एक प्रकार की गति की एक निश्चितम मात्रा दूसरे प्रकार की गति की समान मात्रा में परिवर्तित होती है।''[6]

शुक्ल जी जीव की उत्पत्ति दो शक्तियों से मानते है– द्रव्य व शक्ति। इनका कहना है कि जब द्रव्य व शक्ति एक होते हैं तब जीवन का निर्माण होता है। बिना द्रव्य के या बिना शक्ति के जीवन की उत्पत्ति नही हो सकती है। जीवन की उत्पत्ति तभी संभव है जब शक्ति व द्रव्य एक होते है तथा ये दोनो सदा ही एक रहते है– क्योकि द्रव्य का अस्तित्व शक्ति के बिना कुछ नहीं है तथा शक्ति के नित्य सम्बन्ध की बात की है वो कोई नई बात नही है। प्राचीन काल के भौतिकवादी दार्शनिकों ने यह पहले ही कहा था कि ''गति भूत–द्रव्य'' से बाहर नहीं है। 19वीं शताब्दी कें फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने इस प्रस्थापना का विकास किया[7] तथा संसार मे जितनी मात्रा में द्रव्य है उतनी ही मात्रा में शक्ति भी है न द्रव्य शक्ति से अधिक है न कम, ये हो सकता है कि दोनों के रुपों में परिवर्तन हो जाये द्रव्य शक्ति बन जाये व शक्ति द्रव्य बन जाये परन्तु दोनों का अस्तित्व समान है। मात्रा समान रहती है। अतः निष्कर्षतः शुक्ल ही कहते है कि शक्ति दो प्रकार से क्रियायें करती है एक यह कि वह द्रव्य के पिण्डों अणुओं और परमाणुओं को अपनी ओर खीचती है दूसरे वह द्रव्य के पिण्डो अणुओं और परमाणुओं को दूसरे से अलग करती है। वैशेषिक दर्शन के आधार पर ही शुक्ल जी कहते हैं– ''एक प्रकार के परमाणु के साथ दूसरे प्रकार के परमाणु मिलने से तीसरे रुप से द्रव्य का प्रार्दुभाव होता है।''[8] ''यह एक विशिष्ट मात्रा में परमाणुओं के मिलने से होती है।''[9] शुक्ल जी कहते हैं वैशेषिक दर्शन बहुत हद तक वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है तथ उनका मानना है कि वैज्ञानिक अनुसंधान ने पृथ्वी, जल और वायु को द्रव्य का अवस्था भेद तथा तेज गति शक्ति का एक मात्र रुप सिद्ध कर दिया है। अर्थात जो प्रत्यक्ष है वो द्रव्य है तथा जो अप्रत्यक्ष है, द्रव्य को संचालित करता है वो तेज हैं – जो स्वरुप मात्र है।

समय के परिवर्तन के साथ जो बाते वैशेषिक दर्शन में गलत साबित हुई उसमें परेशानी की कोई बात नहीं अपने समय में ये ही सिद्धान्त आगे बढ़े हुए थे। आज जो सिद्धान्त है हो सकता है कल वो गलत हो जाये। कल जो हो वो हो सकता है परसों गलत हो जाये।जैसे–जैसे विज्ञान आगे बढ़ेगा यह प्रक्रिया चलती रहेगी। इस प्रकार शुक्ल जी विचारों की प्रगति को सिद्धान्त रुप से मानते है। वैसे तो शुक्ल जी ने आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन व जानकारी हासिल की थी परन्तु एक ऐसा वैज्ञानिक व विचारक था जिससे प्रभावित थे वो था 'डार्विन का विकासवाद' डार्विन एक ऐसा वैज्ञानिक व विचारक था जिसने इस जगत में फैले अनेक आडम्बरों का खण्डन किया तथा प्रमाण के द्वारा विकासवाद के सिद्धान्त का वर्णन किया। डार्विन उन सिद्धान्तों का उन्मूलन किया जिस में कहा गया थ कि पशु व वनस्पतियां किसी प्रकार से एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं वो संयोग मात्र है– या ईश्वर द्वारा सृजित है व अपरिवर्तनीय हैं। चूंकि डार्विन के सिद्धान्त तार्किक व वैज्ञानिक होने के साथ–साथ प्रमाणित भी है। अतः विश्वसनीय है। शुक्ल जी ने डार्विन के विकासवाद के आधार पर कई बातें कहीं है। ''जीवों की उत्पत्ति का आरम्भ मोनरा और अमीबा के समान अत्यंत सादे ढंग के सजल बिन्दु रुप अणु जीवों से हुआ।''[10] किन्तु असंख्य पीढ़ियों के पश्चात धीरे धीरे यह हुआ कि जिस भाग पर स्थिति के अनुसार सम्पर्क अधिक हुआ उसमें अभ्यास के कारण सम्पर्क अधिक ग्रहण करने की विशेषता आ गयी आकृति में भी परिवर्तन हुआ।''[11] यह सिद्धांत पूर्णतया विकासवादी है। पुनः शुक्ल जी ने बताया– ''आगे चलकर अत्यन्त छुद्र जन्तुओं का शरीर खण्डों मे विभाजित नहीं होता, इन्ही से बहुखण्ड जीवो का विकास हुआ जिसकी शरीर रचना बहुत से जोड़ों से मिलकर जान पड़ती है। जैसे केंचुएं जोंक इत्यादि।''[12] ''विकास परम्परा के अनुसार इन्ही बिना रीढ़ वाले जन्तुओं की उत्पत्ति हुई।''[13] इसी प्रकार जलचर जन्तुओं से ही स्थलचर जन्तुओं का विकास हुआ।''[14] इसी प्रकार बिना पूंछ के वन मनुष्यों से मिलते–जुलते पूर्वजों से ही क्रमशः विकास

परम्परा द्वारा मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ जो भूमण्डल के प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हैं।[15] शुक्ल जी कहते है– डार्विन ने सिद्ध कर दिया कि एक जाति के जीवों से ही क्रमशः दूसरी जाति के जीवों की उत्पत्ति हुई।''[16] ''डार्विन ने इस धारणा का उन्मूलन किया कि पशुओं तथा वनस्पतियों की प्रजातियां किसी भी प्रकार अन्तः सम्बद्ध नही है वे संयोगिक मात्र है, ईश्वर द्वारा सृजित है, और सदा अपरिवर्तनीय है।''[17] इतना होते हुए भी शुक्ल जी विकासवाद व डार्विन को ही अंतिम सत्य नहीं माना उन्होने उनकी सीमाओं का पहचाना तथा उसका वर्णन भी किया है। शुक्ल जी कहते है– ''जड़ से चेतन की निर्जीव की उत्पत्ति का ब्यौरा वह स्पष्ट रीति से नही समझ सका।''[18] आगे वो कहते है– ''विकासवाद के अनुसार सजीव द्रव्य की उत्पत्ति निर्जीव द्रव्य से माननी पड़ती है। पर कोई रासायनिक आज तक अपनी योजना द्वारा इसे उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हुआ।''[19] शुक्ल जी का मानना है कि विकासवाद अपनी आधारशिला ही ऐसे तथ्य पर रखता है जो निर्जीव है। विकासवाद के वैज्ञानिक तर्कपुष्ट वृत्तांत को ग्रहण करते हुए भी शुक्ल जी उस दार्शनिक भौतिकवाद की ओर नही जाना चाहते जो विकासवाद की तर्कपद्धति में अंतनिर्हित है। शुक्ल जी अपनी उलझन छिपाते नहीं ये लिखते है 'पौधे जन्तुओं की भांति संवेदनशील होते है।' अर्थात्कहीं न कहीं कोई ऐसी सत्ता है जो विभिन्न जीवो जन्तुओं पेड़ पौधों को संचालित कर रही है । किसी न किसी प्रकार से चाहे जीवन द्रव्य हो चाहे चेतन शक्ति हो जो भी हो पेड़–पौधे व जीव जन्तुओं मे समान रुप से विद्यमान है जिसकी गुत्थी कुछ सुलझ चुकी है तथा कुछ सुलझनी बाकी है। उनके अनुसार – ''अब पौराणिक कथाएं ढाल तलवार का काम नही कर सकती इसलिए अब जिन्हे मैदान में जाना हो वो नाना विज्ञानों से तथ्य ग्रहण करके सीधे उस सीमा पर पहुंच जाये जहां दो पक्ष अड़े हुए है– एक ओर आत्मवादी दूसरी ओर अनात्मवादी, एक ओर जढ़वादी दूसरी ओर चैतन्यवादी यदि चैतन्य की नित्य सत्ता सर्वमान्य हो गयी तो फिर सब मतों का समर्थन हुआ समझना चाहिए। क्योंकि चैतन्य सर्व स्वरुप है, नाना भेदों मे अभेद दृष्टि ही सच्ची तत्व दृष्टि है।''[20] यहीं बात उलझन में आ जाती है कि शुक्ल जी वास्तव में आत्मवादी थे, भौतिकवादी थे कि जड़वादी थे। कभी पड़ला एक तरफ झुक जाता है कभी दूसरी तरफ जो भी हो शुक्ल जी वैज्ञानिक व प्रगतिवादी थे, वे आशावादी थे तथा कहीं न कहीं से उनका मन में था कि विज्ञान एक न एक दिन इन अनसुलझी गुत्थियों को खोलकर रख देगा। देरी बस तभी तक की है– जब तक ऐसा नहीं हो पा रहा है।

शुक्ल जी जहां कहीं–कहीं आत्मा की स्वतंत्रता सत्ता स्वीकार कर लेते हैं– ''आत्मा एक वस्तु या सत्ता है द्रव्य गुण या वृत्ति मात्र नहीं।'' वही कहीं–कही वे विज्ञानवादी भी बन जाते है। डॉ0 रामकृपाल पाण्डेय कहते हैं – ''इस प्रकार स्पष्ट है कि जहां तक विज्ञान सफल है – वहां तक वे पूर्णरुपेण विज्ञानवादी (भौतिकवादी) है और उसका समर्थन नही करते है। किन्तु जहां विज्ञान असमर्थ है, वहां वे आंख मूंद कर उसका समर्थन नहीं करते है– अतः उन्हे विज्ञानवादी आत्मवादी कहा जा सकता है– केवल विज्ञानवादी या केवल आत्मवादी नहीं।''[21] शुक्ल जी आत्मवादी तो मजबूरी में है– क्योकि विज्ञान अभी चेतन की उत्पत्ति को सिद्ध करने में असफल रहा है। शुक्ल जी यद्यपि विकासवाद को मानते तो है– परन्तु प्राणि जगत में संघर्ष और योग्यतम के जीने का सिद्धान्त नहीं ग्रहण करते है बल्कि स्पेन्सर के परस्पर सहाय की प्रवृति को स्वीकार किया है।

डॉ रामविलास शर्मा ने आचार्य शुक्ल की विश्व दृष्टि की वस्तुनिष्ठता व कर्तव्यपरायणता को हिन्दी आलोचना परम्परा में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विरासत के रुप में रेखाकित किया। बाते वही है– कहने के ढंग अलग हो सकते

है। शुक्ला जी ने जब ' रिडिल आफ युनिवर्स का 'विश्व प्रंपंच की भूमिका के रुप में अनुवाद किया तो अन्य लोगों के साथ डॉ शर्मा भी उनके समर्थको में है, विश्व प्रपंच के बारे में शर्मा जी कहते है– ''संसार के प्रति हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण क्या हो इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हिन्दी में पहली बार इतने विस्तार से विज्ञान का अध्ययन किया गया।''[22] विश्व प्रपंच की भूमिका के बारे में शर्मा जी कहते है– ''यह लम्बी भूमिका मानव ज्ञान की वर्तमान स्थिति का आभास देने के लिए ही लिखी गई है।''[23] डॉ0 शर्मा के कहने का तात्पर्य यह है कि शुक्ल जी जगत मे ंजीवन के बारे मे हो रही तमाम नयी नयीं बातों से हम सबकों परिचित करा रहे थे तथा एक प्रकार से आडम्बरों व अतार्किक अन्धविश्वासों से विमुख कर वास्तविकता के पास लाने का प्रयास कर रहे थे। हैकल की पुस्तक का परिचय भी शुक्ल जी इस तरह से देते है– 'यह आत्मवादी अधिभौतिकवादी पक्ष का सिद्धांत संग्रह है, जिन्हे भूतवादी अपने पक्ष के प्रमाण में उपस्थित करते है।' रामविलास जी रिडिल आफ युनिवर्स के बारे मे कहते –''जिस पुस्तक को पादरियों ने गालियां दी, उसे शुक्ल जी ने हिन्दी में अनुवाद योग्य समझा। गाली देने का कारण यह था कि हैकल भौतिकवादी थे। उन्होनें विकासवाद का प्रतिपादन व समर्थन किया था इससे धार्मिक अन्धविश्वासों को धक्का लगा।' शुक्ल जी ने हैकल को 'जगाद्विख्यात प्राणिवेता' कहा है। वास्तव मे हैकल ने प्रयास किया कि वो आत्मवादी अधिभौतिकवादी सिद्धान्त को आम जनमानस के समक्ष रखे।

चूंकि शर्मा जी कहते है जिस पुस्तक (रि0आ0यू0) को पादरियों ने जो आत्मवादी थे, अंधविश्वासी थे ने गाली दिया उसी पुस्तक को शुक्ल जी ने अनुवाद के योग्य समझा अर्थात वो भौतिकवादी स्वतः सिद्ध हो जाते हैं– इसमें किसी को कहने या न कहने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। शर्मा जी शुक्ल के बारे में लिखते है– ''उन्होने हैकेल वाद की वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करके मूल विवेचन को अपने युग के पाठकों के लिये पूर्ण बनाया है।''[24] आगे कहते– ''शुक्ल जी ने 19वीं सदी में विज्ञान की प्रगति के साथ जगत के सम्बन्ध में लोगों की पुरानी भावनाएं बदलने की बात कही है।''[25] शुक्ल जी ने उस अवधारणा को गलत सिद्ध किया (तर्क द्वारा) कि धार्मिक विश्वासों के अनुसार लोग समझते थे कि जीवन योनियां ईश्वर की रची हुई है और सदा ऐसी ही है।''[26] इसी प्रकार शुक्ल जी की तरह डॉ0 शर्मा भी डार्विन के विकासवाद को स्वीकार करते हैं तथा कहते हैं–''पौराणिक अन्धविश्वास वहां भी थे यहां भी है और हैं। डार्विन ने सिद्धकर दिया कि जीवन योनियां एक लम्बे विकास क्रम का परिणाम है, ईश्वर की रचना नहीं है।''[27] यहां शर्मा जी ने भी उसी अंधविश्वास के विरोध का समर्थन किया जिसका आचार्य शुक्ल ने किया था। शर्मा जी लिखते हैं– ''भूत व शक्ति परस्पर सम्बद्ध है। शक्ति या गति के बिना भूत की सत्ता नहीं है। शक्ति की गतिशीलता के कारण इसके दो विरोधी रुपो ंका आकर्षण व अपसरण की एकता है।''[28] डॉ0 रामविलास शर्मा ने शुक्ल जी को अपने समकालीनों से विशिष्ट पाया। उनके अनुसार– ''प्राचीन दर्शन के प्रति उनका यह (नया) दृष्टिकोण पुनरुत्थानवादियों और अन्धश्रृद्धालुजनों की उपासना पद्धति से बिलकुल भिन्न है।''[29] शर्मा जी कहते है जितना दिखाई देता है बस उतना ही नही है– क्योंकि परमाणु का प्रत्यक्ष नहीं होता, पुनः पूछते हैं– परमाणु क्या है? पहले लोग समझते थ कि 'द्रव्य के सूक्ष्म तत्व की चरम सीमा' परमाणु है। उसे अखण्ड व नित्य समझते थे पर अब उसके खण्ड खण्ड होनेके प्रमाण मिल गये है। अर्थात यूरेनियम, रेडियम आदि कई नये मूल द्रव्यों के मिलने से स्पष्ट हुआ कि परमाणु अर्थात द्रव्य तत्वों का सम्मिश्रण है, अतः जगत जितना दिखाई देता है– उतना ही नहीं हैं। यहां शर्मा जी भी वही बात दुहराते हैं जिसका बात को शुक्ल जी कह चुकें हैं शर्मा जी परमाणु` खण्ड–खण्ड होने के बात प्रमाणित होने

पर,उसे अखण्ड होने के बात गलत साबित होने के आधार पर बताना चाहते हैं कि परमाणु की ही तरह इस जगत में कई ऐसी बाते है जिनके बारे में अभी पूर्ण जानकारी मिल नहीं पायी है– मिल जाने पर स्पष्ट हो जायेगा कि कौन तत्व किस–किस से मिलकर बना है तथा कितना है।

चूंकि अध्यात्मवादी पदार्थ या भूत को जड़, गतिहीन, स्थूल मानतें है इसी वजह से अगोचर या आत्मसत्ता की कल्पना करते हैं– किन्तु प्रकृति इतनी सूक्ष्म है कि उसकी सूक्ष्मता की कल्पना करना कठिन है लोग आत्मा परमात्मा को ज्योति स्वरुप, अगोचरशक्ति आदि रुपो में कल्पित करते हैं– किन्तु प्रकृति की सूक्ष्मता की कल्पना करना कठिन है लोग आत्मा परमात्मा को ज्योति स्वरुप, अगोचरशक्ति आदि रुपों में कल्पित करते हैं–किन्तु प्रकृति की सूक्ष्मता के आगे ज्योति व शक्ति की कन्ल्पनांए स्थूल जान पड़ती है। यहीं बात शुक्ल जी भी कहते है कि परमाणु का प्रत्यक्ष नहीं होता, परमाणु की बात छोड़ दीजिए अणुओं की सूक्ष्मता भी कल्पनातीत है। तीव्र से तीव्र सूक्ष्म दर्शक यन्त्र उनका दर्शन नहीं करा सकते उनका निरुपण उनके कार्यों द्वारा गणित आदि के सहारे ही किया जाता है। डॉ0 शर्मा कहते हैं– ''शुक्ल जी ने प्रकृति की सूक्ष्मता का कलात्मक वर्णन किया है। उस वास्तविक सूक्ष्मता के आगे परमाणु जगत के अन्तरिक्षों की तुलना में मनुष्य की कल्पना अत्यन्त स्थूल और जड़ सिद्ध होती है। परमाणु सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के कुछ निकट प्राचीन भारत और युनान के दार्शनिकों की परमाणु सम्बन्धी कल्पनाएं पहुंचती है।''[30] अर्थात शर्मा जी भी शुक्ल जी की ही तरह प्राचीन दर्शनों की मान्यता देते हैं– क्योंकि आज जो बीते सिद्ध हो रही है वो प्राचीन दार्शनिको की बातों के बहुत निकट है। शुक्ल जी 'वैशेषिक दर्शन के बारे में कह ही चुके है कि मूलभूत और परमाणु की कल्पना इसी रीति पर हमारे यहां के वैशेषिक दर्शन में भी हुई है।' शुक्ल जी का प्रकृति को गतिशील मानना, शक्ति व पदार्थ में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध मानना, तथा पदार्थों का शक्ति रूपों की एकता मानना, शर्मा जी की दृष्टि में यह वैज्ञानिक दृष्टि भौतिक जगत्के बारे में शुक्ल जी के दार्शनिक चिन्तन का महत्वपूर्ण अंग है।

शर्मा जी जगत् में गुणात्मक परिवर्तन के नियम को स्वीकार करते हैं तथा कहते हैं– ''संसार के दृश्यमान पदार्थ स्थिर और अपरिवर्तनशील नही हैः उनके परमाणु और गुणों मे बराबर तब्दीली हुआ करती है।''[31] डॉ0 शर्मा जहां आचार्य शुक्ल की बातों का समर्थन करते है वही उनकी द्वंदात्मकता का भी वर्णन करते हे। डॉ0 शर्मा कहते है– ''संक्रमण बिन्दुओं पर पदार्थों का गुण बदलना, कुछ समय के लिए संक्रमण की दशा मे रहना, पदार्थों व जीवों को स्थिर और अपरिवर्तनशील रुपों वाला न मानना, संक्रमणशील जीवों मे भिन्न जातियों के गुणो का होना, यह द्वंदात्मक पद्धति शुक्ल जी के अध्ययन की विशेषता है।''[32] आचार्य शुक्ल की विश्व दृष्टि को वैज्ञानिक भौतिकवाद से अत्यन्त निकट लाने की डॉ0 शर्मा की कोशिशों की प्रतिक्रिया भी हुई। श्री नीलकांत कहते है– ''उनके वाद भौतिकवाद से कतई मेल नहीं खाते। शुक्ल जी ने न केवल अपनी स्थिति को ही प्रकट किया बल्कि पूर्व स्थिति का भी खुलासा कर दिया ताकि किसी को भ्रम न रह जाए।''[33] और अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिए वो शुक्ल जी के चिन्तामणि का उदाहरण देते है– ''जगत अव्यक्त ही अभिव्यक्ति है और काव्य इस अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति है'' तथा ये सब कहकर नीलकांत आगे कहते है– ''शुक्ल जी दोहरी सत्ता में विश्वास करते है।''[34] जिस प्रकार 'द्रव्य' एक अवस्था से दूसरी अवस्था– ठोस से द्रव्य, द्रव्य से वायव्य, वायव्य से द्रव्य, द्रव से ठोस अवस्था में लाया जा सकता है। उसी प्रकार गतिशक्ति भी एक रूप से दूसरे रुप में लाई जा सकती है। गति ताप के रुप में परिवर्तित हो सकती है, ताप विद्युत के रुप में विद्युत ताप व प्रकाश के रुप में लाई जा सकती है। गति ताप के रुप में परिवर्तित हो

सकती है, ताप विद्युत के रुप में विद्युत ताप व प्रकाश के रुप में। इस बात को शुक्ल जी पहलें भी कह चुके है कि –द्रव्य शक्ति रुप में तथा शक्ति द्रव के रुप में परिणत हो सकता है। शुक्ल जी मानते हैं कि पदार्थों के जो विभिन्न रुप दिखाई देते हैं वो सन्निवेश भेद से है– तेज के सम्बन्ध में वस्तुओं के गुण में बहुत कुछ फेर–फार हो जाता है जैसे– घड़ा पकने पर लाल हो जाता है।

अजीव से जीव की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे शुक्ल जी की तरह शर्मा जी भी प्रश्न उठाते हैं कि – ''यह द्वंदात्मक भौतिकवाद का प्रमुख सिद्धांत है जो अजीव से जीव और अचेतन से चेतन का विकास समझने में सहायता करता है। विज्ञान की एक मौलिक समस्या जिसे हल करना बाकी है, यह है कि – जीवन तत्व अजीव भूत से कैसे उत्पन्न होता है?''[35] विज्ञानवादी जल से जीवन की उत्पत्ति बताते हैं– पर इसको भी तो मानने से कई समस्याओं व प्रश्न उठते है कि जल भी तो कई अणुओं से मिलकर बना है तथा वो अणु भी कई अन्य अणुओं से मिलकर बना है। वौ कौन घटक तत्व है जिनके द्वारा जीवन की उत्पत्ति हुई है इसे विज्ञानवादी नहीं बता पाये हैं। ये समस्या सुलझनी बाकी है। इस प्रकार हम कह सकते है कि किसी एक पक्ष को पूरी तौर पर सही या गलत नहीं कहा जा सकता– शर्मा जी कहते हैं– ''यद्यपि भौतिकवादी की ओर अधिक झुकाव होने के बावजूद उनको (शुक्ल जी) सुसंगत भौतिकवादी नहीं कहा जा सकता''[36] यद्यपि शुक्ल जी की तरह शर्मा जी भी जीवन सिद्धान्त का वर्णन करते हुए वहीं पहुंच कर रुकते है – जहां विज्ञान अभी खोज नहीं कर पाया है। परन्तु इसे वो शुक्ल जी की भांति विज्ञान की असफलता स्वीकार नहीं करते हैं। शुक्ल जी की भांति वो भी आशावादी है कि भविष्य में गुत्थी सुलझेगी। शर्मा जी कहते हैं– ''वैज्ञानिक अनुसंधान कर्ता अपनी प्रयोगशाला में जीवन तत्व नहीं बना सके। इससे विज्ञान की असफलता सिद्ध नहीं होती, इससे इतना सिद्ध होता है कि विज्ञान के लिए बहुत कुछ बाकी है। वैज्ञानिकों का ज्ञान आध्यात्मवादियों के ज्ञान के सामान पूर्ण नहीं है– वरन् सतत् विकास मान है।''[37] स्पष्टतः डॉ0 शर्मा ने शुक्ल जी की विश्व दृष्टि को संगत भौतिकवादी बताने की जगह उसकी भौतिकवादी दिशा को रेखांकित किया है। लिखते है– प्राणिजगत में विकास प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए शुक्ल जी ने द्वंद सिद्धांत के उन संक्रमण बिन्दुओं का वर्णन किया है, जहां वह 'क' पदार्थ 'ख' बनता है, जहां उसमें गुणात्मक परिवर्तन होता है, जहां वह ने 'क' रहता है न 'ख' अर्थात दोनों के गुण रहते है।''[38] डॉ रामविलास शर्मा भौतिकवाद को वाहय जगत तक सीमित रखने के तर्क को निराधार मानते हैं, वे कहते है– ''वैज्ञानिक भौतिकवाद मनुष्य के अर्न्तजगत को अस्वीकार नहीं करता वह उसे वाह्य जगत की प्रतिच्छाया मानता है।''[39] इसी प्रकार शुक्ल जी ने चर–अचर के भेद को भी प्रमाण द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया जिसमें पौधों का अचर तथा जन्तुओं को चर माना जाता था। पर कुछ पौधे ऐसे है– जो चर भी है, जैसे– स्पंज, मूंगा आदि सूक्ष्म समुद्री पौधे है जो चलते फिरते हैं– यहां भी संक्रमण तथा अन्य स्थितियों की बात उठी। शर्मा जी भी मानते है–''अचेतन संवेदन से चेतन का विकास होता है।''[40] शुक्ल जी कहते हैं– संवेदन का सब से आदिम रुप है, प्रतिक्रिया अर्थात किसी पदार्थ के साथ सम्पर्क होते ही शरीर में भी एक विशेष प्रकार का क्षोभ या क्रिया होती है– लजालूं आदि पौधों में तो यह प्रतिक्रिया स्पष्ट देखी जा सकती है। इस विषय में शुक्ल जी ने जगदीश चन्द्र बसु के अनुसंधान का वर्णन किया है। अध्यापक जगदीश चन्द्र बसु ने तो पौधों के सुख–दुख आदि के सम्बेदन का अर्थात उनके संवेदन सूत्रो में उत्पन्न क्षोभ को अपने सूक्ष्म और अद्भुद यंत्रों द्वारा प्रत्यक्ष दिखा दिया है। यही नहीं उन्होने अपने खोज का आगे बढ़ाया और निर्जीव व सजीव के बीच समझे जाने वाले भेद–भाव को बहुत

कुछ मिटा दिया है। शर्मा जी कहते हैं– ''संवेदन करने का कार्य त्वचा करती है।''[41] पहले त्वचा द्वारा संवेदन ग्रहण,फिर इस अचेतन अवस्था से इन्द्रियों और मस्तिष्क का विकास मोटे रुप में चेतना की विकास की यह प्रतिक्रिया जी के समाने रही है।''[42] यहां फिर से प्रश्न उठता है शुक्ल जी भौतिकवादी थे या वस्तुवादी, शर्मा जी कहते हैं– ''शुक्ल जी ने छोटे–छोटे भेदों का जाल दूर करते हुए दर्शन की दो मूल धाराओं का परस्पर विरोध स्पष्ट करके पाठकों को अपने रास्ते ढूंढने में सहायता दी है। फिर भी उन्होने इन दोनेा पक्षों में खुलकर किसी एक को गलत या सही नहीं कहा।''[43] आज विज्ञान निरन्तर प्रगतिशील है प्रयोग पर प्रयोग होते जा रहे हैं– पुरुष के शुक्राणु के एक अणु को लेकर स्त्री के गर्भ में स्थापित कर दिया जाता है, तथा अब तो स्त्री के गर्भाशय की भी आवश्यकता नहीं टेस्ट ट्यूब बेबी का प्रचलन है जिसमें यन्त्रों में इस प्रकार शुक्राणु रखकर जीव बना दिये जाते हैं ये सब हो रहा पर वो बात आज भी वहीं की वहीं है कि बिना शुक्राणु के लिये जीवन नहीं बन सकता। प्रश्न उठता है कि वो तत्व कहां से आया? स्वाभाविक है, मनुष्य से मनुष्य बना, पर प्रश्न उठा जीन देने वाले जीन को कौन बनाता है? वही प्रश्न आज अनसुलझा है।

वो कौन सी शक्ति है जो एक छोटे से अणु द्वारा एक विशाल हांथी पैदा कर देती है? वौ कौन सी शक्ति है, जो नेत्रों में प्रकाश, कानों मे सुनने की क्षमता देती है? तथा वो कौन शक्ति है जो इस चलायमान शरीर को एकदम शून्य कर देता है, मृत कर देता है,? फिर कोई प्रयोगशाला नहीं बनी कि मृत को जीवित कर दे, यही कुछ प्रश्न ऐसे है– जहां कई बड़े वैज्ञानिक भी आध्यात्म की ओर झुक जाते है, तथा अप्रत्यक्ष सत्ता की बात करने लगते हैं।

शुक्ल जी विश्व दृष्टि का महत्व इस बात मे नही निहित है कि वह अन्ततः वह भौतिकवादी ठहरती है या आत्मवादी। महत्वपूर्ण बात यह है कि वे आधुनिकता के तर्कवादी ढांचे को अपनाते हैं और आम जनमानस को इससे निकट ले जाकर उनकी मानसिकता को परिवर्तित करना चाहते हैं –क्योंकि प्राचीनकाल के सामाज में व्याप्त आडम्बर, अंधविश्वास, जादू टोना, झाड़ फूंक, आत्मा परमात्मा, ये सब इतनी हद तक जनमानस में अपना पैठ बना चुके है कि इससे समाज को विकास के मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिये इन नयी नयी खोजों व पहलुओं से परिचित कराना आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. विश्व प्रपंच की भूमिका (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 1920 ई0) पृ0 3
2. वहीं, पृ0 – 12
3. वहीं, पृ0 – 12
4. वहीं, पृ0 – 12
5. वहीं, पृ0 – 13
6. वहीं, पृ0 – 04
7. मार्क्सवाद मूल और सारतत्व (थियोडोरी ओइत्सरमान), पृ0 27
8. विश्व प्रपंच की भूमिका भाग–1 (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 1920 ई0) पृ0– 06
9. वही पृ0– 06
10. वही पृ0– 45
11. वही पृ0– 46
12. वही पृ0– 55
13. वही पृ0–56
14. वही पृ0–61
15. वही पृ0–68
16. वही पृ0–26

17. मार्क्सवाद मूल और सारतत्व (थियोडोरी ओइत्सरमान), पृ0 28
18. विश्व प्रपंच की भूमिका भाग–1 (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 1920 ई0) पृ0–31
19. वही पृ0–99
20. वही पृ0–148
21. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्य सिद्धांत (डॉ राम कुपाल पाण्डेय), पृ0 24
22. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, दूसरे संश्करण की भूमिका, (डॉ0 राम विलास शर्मा), पृ0 – 17
23. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, दूसरे संश्करण की भूमिका, (डॉ0 राम विलास शर्मा), पृ0 – 16
24. वही पृ0–17
25. वही पृ0–17
26. वही पृ0–17
27. वही पृ0–18
28. वही पृ0–18
29. वही पृ0–20
30. वही पृ0–20
31. वही पृ0–20
32. वही पृ0–22
33. रामचन्द्र शुक्ल (नीलकान्त), पृ0 37
34. रामचन्द्र शुक्ल (नीलकान्त), पृ0 37
35. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, दूसरे संश्करण की भूमिका, (डॉ0 राम विलास शर्मा), पृ0 – 21
36. वही पृ0–24
37. वही पृ0–21
38. वही पृ0–22
39. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, (डॉ0 राम विलास शर्मा), पृ0 – 73
40. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, दूसरे संश्करण की भूमिका, (डॉ0 राम विलास शर्मा), पृ0 – 22
41. वही पृ0–23
42. वही पृ0–23
43. वही पृ0–23